संगीत एवं काव्य का पारस्परिक सम्बन्ध

डॉ० किरन शर्मा
असिस्टेंट प्रोफसर, संगीत विभाग
आर०जी० (पी०जी०) कॉलेज, मेरठ
ईमेलः arunitas93@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ० किरन शर्मा

संगीत एवं काव्य का पारस्परिक सम्बन्ध

Artistic Narration 2024,
Vol. XV, No. 1,
Article No. 14 pp. 80-84

Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/artistic-narration-2024-vol-xv-no1-233

सारांश

काव्य एवं संगीत का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन हैं। हम कह सकते है कि बिना संगीत के काव्य तथा बिना काव्य के संगीत निरर्थक है। वेदों में वर्णित पदात्मक ऋचायें तथा श्लोक गेय रूप में प्राप्त होते है। दोनों में ही लय, छन्द, ताल, स्वर, संगीत का अपना महत्व है। दोनों की ही उत्पत्ति का आधार नाद है। पंच महाभूतों में से प्रथम और सबसे सूक्ष्म आकाश का गुण 'शब्द' ही वाक तत्व है। संगीत अभिव्यक्ति प्रधान है, काव्य विचार प्रधान। संगीत के उपकरण स्वर–लय है– काव्य के शब्द–अर्थ। किन्तु दोनों ही परस्पर एक दूसरे से बंधे हैं। रसालंकार युक्त काव्य की स्वर, ताल एवं लय में आबद्ध रचना ही संगीतमय काव्याभिव्यक्ति है। 'रस' दोनों की ही आत्मा है। अन्तर मात्र इतना है कि काव्श्य में भाषा माध्यम बन जाती है और संगीत में स्वर। लय का दोनों में ही समान रूप से महत्व है। भक्ति कालीन कवियों की रचनायें यदि संगीतमें पिरोकर ना प्रस्तुत की गयी होती तो शायद वे इतनी प्रभावशील ना होती। यद्यपि काव्श्य एवं संगीत दोनों की अभिव्यक्ति का माध्यम भिन्न है किन्तु दोनों की समन्वित गंग धारा अलौकिक एवं अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कराती है।

मुख्य बिन्दू

पदात्मक ऋचायें, श्लोक, लय–ताल, छन्द, काव्याभिव्यक्ति, रसानुभूति।

कवि की कल्पना और भावनाओं की अभिव्यक्ति से उत्पन्न कविता जब स्वर, ताल एवं लय में आबद्ध हो संगीत का स्वरूप प्राप्त कर लेती है तो उसका आनन्द द्विगुणित हो जाता है दोनों का आधार नाद है। शास्त्रों में कहा गया है –

नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः।
नादरूपा पराशक्तिर्नादरूपो महेश्वरः।।

भारतीय परम्परा में नाद–तत्व की जो अपार महिमा गाई गई है, वह सम्भवतः विश्व की किसी अन्य विचाराधारा में नहीं। 'आहत' और 'अनाहत', दो प्रकार के नाद में से 'आहत' नाद से ही संगीत और काव्य, दोनों की उत्पत्ति होती है। पंच महाभूतों में से प्रथम और सबसे सूक्ष्म आकाश का गुण 'शब्द' ही 'वाक्' –तत्व है, जो संगीत और काव्य, दोनों का आधार है। भारतीय संगीत का प्राचीनतम शास्त्र–ग्रन्थ भारत–कृत 'नाटय–शास्त्र' है। उसमें संगीत के स्थान पर 'गान्धर्व' का प्रयोग हुआ है और यह गान्धर्व 'स्वरतालपदात्मक' है। पद इसका अनिवार्य तत्व है। यद्यपि मौलिक रूप से 'संगीत' या 'गान्धर्व' के दो ही उपकरण हैं– स्वर और लय, किन्तु पद के कारण अभिव्यक्ति को निश्चित दिशा मिलती है।

काव्य और संगीत का सम्बन्ध शाश्वत है– अध्यात्मवाद की दृष्टि से भी और विकासवाद की दृष्टि से भी। अध्यात्मवाद की दृष्टि से वेद को अपैरूषेय माना जाता है। वेद यदि अपौरूषेय है, तो वेद की ऋचाओं को गाने के नियम भी अपौरूशेय है। 'ऋग्वेद' के अधिकांश मन्त्र ही जब सस्वर गाए जाते है, तब उन्हें 'सामवेद' कहा जाता है। 'ऋग्वेद' के पाठ में भी स्वर का प्रयोग होता है। यद्यपि 'सामवेद' के समान एकाधिक स्वरों का प्रयोग नहीं होता, तथापि एक स्वर में मन्त्रोच्चारण तो किया ही जाता है। स्वर एक हो या अधिक, उसे संगीत से भिन्न नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य के साथ संगीत का शाश्वत सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है।

विकासवाद की दृष्टि से सभी विद्याओं, कलाओं, सिद्धान्तों, शास्त्रों आदि का विकास धीरे–धीरे हुआ है। मनुष्य अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति, आवश्यकता और प्राकृत ज्ञान के सहारे अनेक विद्याओं एवं कलाओं का आविष्कर्ता बना। जिस समय भाषा–शास्त्र और स्वर–शास्त्र, दोनों का विकास नहीं हुआ था, उस काल की प्रारम्भिक स्थिति क्या रही होगी? किसी शब्दोच्चारण के लिए आवाज–अर्थात् नाद या स्वर की एवं किसी स्वरोच्चारण के लिए शब्द की आवश्यकता पड़ी ही होगी। बिना स्वर के सहारे शब्दोच्चरण और बिना शब्द के सहारे स्वरोच्चारण असम्भव ही है। उदाहरणार्थ, हम मुंह से कोई शब्द बोलना चाहते हो, तो क्या वह सम्भव होगा कि बिना स्वर के सहारे शब्दोच्चारण कर लें या बिना शब्दोच्चारण के स्वोच्चारण कर लें? कदापि नहीं। स्वरोच्चारण और शब्दोच्चारण एकसाथ ही होगा। इससे सिद्ध होता है कि शब्द और स्वर का सम्बन्ध शाश्वत है। यही शब्द और स्वर विकसित होकर साहित्य–शास्त्र के रूप में प्रचलित हुए। इस प्रकार यह विवाद नहीं रह जाता कि साहित्य प्रथम है अथवा संगीत। दोनों एक–साथ है, यह सिद्ध हो जाता है।

शब्दों के माध्यम से हृदयगत मनोभावों की कलात्मक, रसात्मक और लयात्मक अभिव्यक्ति ही काव्य का रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार स्वर के माध्यम से वही कलात्मक, रसात्मक और लयात्मक अभिव्यक्ति संगीत का रूप धारण कर लेती है। दोनों का आधार एक है, अभिव्यक्ति के माध्यम भिन्न। परन्तु दोनों समन्वित रूप में अधिक आनन्दनायक बन जाते है। काव्य और संगीत की समन्वित गंग–धारा का स्नान अलौकिक,

अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कराता है। इसीलिए काव्य और संगीत का अन्योन्याश्रमय– सम्बन्ध सदा–सदा से है और रहेगा।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि संगीत के बिना काव्य प्रभावशाली तो रहता है, किन्तु उसमें जन–मानस को आन्दोलित कर उत्साहित करने की पूर्ण शक्ति का अभाव रहता है। इसी प्रकार शब्द–रहित स्वर–संगीत कल्पना–लोक के स्वप्निल आनन्द की सृष्टि तो करता है, परन्तु उसमें हृदय के भावों को साकार करके सर्व–साधारण के लिए सुलभ बनाने की न्यूनता परिलक्षित होती है। हां, काव्य और संगीत का समन्वित सन्तुलित रूप जन–मानस को आन्दोलित कर आत्मा को पूर्ण रूप से जाग्रत कर देता है। इसलिए तो प्राचीन काल से ही जब–जब संगीत और साहित्य के समन्वित रूप का प्रयोग जिस उद्देश्य–विशेष को लेकर किया गया, सदा सफल रहा।

आदि–काव्य 'वाल्मीकीय रामायण' का सस्वर पाठ जब लव–कुश द्वारा राघव के अश्वमेघ यज्ञ में हुआ, तब भगवान् राम–सहित सारी सभा उस अलौकिक अद्भूत काव्य–गांव को सुनकर स्तम्ध रह गयी। महर्षि वाल्मीकि का लव–कुश द्वारा रामायण–गान कराने का तात्पर्य ही यही था कि सीता, राम तथा लव–कुश का मिलन हो जाए। अन्य शिष्यों द्वारा 'रामायण' का सामान्य पाठ भी सुनवाया जा सकता था, किन्तु इस काव्य का गान कराना, और वह भी लव–कुश द्वारा, विशेष कार्य की सिद्धि–हेतु सुनिश्चित योजना थी। लव–कुश के 'रामायण'–गान को सुनकर भगवान् राम के मन में उन अलौकिक प्रतिभा–सम्पन्न बालकों के प्रति ज्यों ही वात्सल्य–भाव, त्यों ही उस सुन्दर अवसर पर महर्षि वाल्मीकि ने लव–कुश का परिचय करा दिया। भारतीय इतिहास में अंकित काव्य–गान की यह अमर गाथा काव्य और संगीत के मांगलिक सम्बन्ध को सदैव व्यक्त करती रहेगी।

मुगलकालीन भारत में जब चारों ओर अत्याचार, अनाचार और धर्म–परिवर्तन का उफान आ गया था, लोगों की धार्मिक भावना डगमगाने लगी थी, उस समय भी हमारे देश के महामहिम सन्तों ने काव्य और संगीत के माध्यम से भक्ति, उपासना, ज्ञान, धर्म आदि की शिक्षा देकर मृतप्राय भारतीय समाज को जीवन–दान दिया। तुलसीदास, सूरदास, मीरा, रहीम आदि के काव्य रूपी पद यदि संगीत के धागे में न पिरोए गये जोते तो शायद वे साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि के होने के उपरान्त भी सामान्य जनमानस के हृदय–हार न बन पाते। काव्य की सार्थकता हेतु सार्थक पदावली के साथ संगीत की गेयता भी आवश्यक है तभी वह जनप्रिय बन सकता है। उदाहरण के लिए, गोस्वामी तुलसीदास का 'राम–चरित्र–मानस' उत्कृष्ट काव्य होने के साथ ही ऐसा गेय काव्य है, जो जन–सामान्य और मर्मज्ञ जन, दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। ग्रामीण समाज में भी इस काव्य का गान होता है। ग्रामीण जनता मात्र काव्य द्वारा आनन्द प्राप्त नहीं कर सकती है, वहाँ इस 'मानस' का गान उसे अलौकिक आनन्द प्रदान करके भगवत्–उपासना करने की प्रेरणा देता है। 'विनय–पत्रिका', 'गीतावली' आदि गोस्वामी की अधिकांश रचनाएं गेय होने के कारण ही अधिक प्रचलित हुई।

सन्त कबीर के दार्शनिक सिद्धान्त, मीरा की प्रेम–विफलता, सूर के विनय और वात्सल्य के पद, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास आदि के गीत, संगीत और काव्य की सम्मिलित रस–धारा बनकर ही जन–जन को तृप्त करने में समर्थ हुए। भर्तृहरि ने साहित्य–संगीत–कला–विहीन पुरूष को साक्षात पशु की संज्ञा दी है। इस उक्ति से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि साहित्य एवं संगीत प्राचीन समय में एक–दूसरे से पृथक नहीं थे। संगीतज्ञ को साहित्य का तथा साहित्यकार को संगीत का यथेष्ट ज्ञान वांछित था। वैसे

भी काव्य तथा संगीत का साथ चोली–दामन का है। प्राचीन समय में 'पाठ्य' तथा 'गेय' साथ–साथ चला करते थे। पाठ्य में काव्य की प्रधानता रहती थी एवं गेय सहायक होता था तथा गेय में संगीत प्रधान एवं पाठ्य गौण रहता था।

'संगीत–रत्नाकर' में वाग्गेयकार के लिए अन्य अनेक गुणों के अतिरिक्त व्याकरण–शास्त्र तथा 'अमरकोष' आदि ग्रन्थों का ज्ञाता एवं रस–मर्मज्ञ होना अनिवार्य बताया है। दूसरे शब्दों में बिना यथेष्ट साहित्यकार जानकारी के किसी को सांगीतिक रचना करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। इससे भी हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि सांगीतिक रचना की पृष्ठ–भूमि में काव्य–ज्ञान परमावश्यक है, अन्यथा रचना उत्तम नहीं हो सकती। उत्तम सांगीतिक रचना की कसौटी, प्राचीनकाल में संगीतज्ञ का काव्य–ज्ञान थी, परन्तु मध्य–काल में काव्य–पक्ष और संगीत–पक्ष अलग–अलग होते चले गए। मध्य–युग के राज्याश्रय–प्राप्त गायकों ने अपने आश्रयदाताओं को स्तुति में रचनाएं बांधी।

वर्तमान युग में काव्य तथा संगीत की अपनी–अपनी दिशाएं दृष्टिगोचर होती है। संगीतज्ञ को काव्य से कोई विशेष रूचि नहीं है। काव्य तथा संगीत के उचित समन्वय का अभाव दोनों को पृथक करता जा रहा है। इस युग की प्रयोगवादी 'अकविता' तथा गद्य–काव्य में तो संगीत के लिए तनिक भी स्थान नहीं है, क्योंकि किसी छन्द–विशेष के अभाव में वह लय–बद्ध हो ही नहीं सकता। अतः आधुनिक काव्य–धारा स्वतः ही संगीत से अलग होकर बह निकली है। किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि काव्य में संगीत ही एक ऐसा तत्व है जो उसे शीघ्र ही सामान्य जनजीवन में लोकप्रिय करा देता है। स्वर–लय–ताल–छन्द युक्त कविता ही संगीत के माध्यम से भावाभिव्यक्ति को सार्थक रूप प्रदान करती है।

काव्य तथा संगीत, दोनों की ही आत्मा 'रस' है। संगीत की आत्मा 'रंजन' है। रस ही रंजन का कारण है। काव्य के अन्तर्गत नव–रस का विधान संगीत में केवल चार रसों (श्रृंगार, वीर, करूण और शान्त) में ही समाविष्ट कर लिया गया है। काव्य में शब्दावली के माध्यम से रस उत्पन्न किया जाता है तथा काव्योत्पन यह रस स्वरों की सहायता से चरमोत्कर्ष की दिशा में लाया जाता है। यहां भी एक प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि गायक को रसानुभूति न होगी, तो उसकी अभिव्यक्ति किस प्रकार रंजकता उत्पन्न कर सकेगी। काव्य–ज्ञान के अभाव में वह शंकरा, हिंडोल, मारवा तथा श्री आदि वीर रस के रागों में घोर श्रृंगारिक रचनाएं प्रस्तुत करेगा और पीलू, झिझोटी, भैरवी तथा काफी जैसे श्रृंगार–प्रधान रागों में वीर–रस की रचनायें करने का प्रयत्न करेगा। परिणाम 'रंग में भंग' होगा। कौन से राग किन रसों के परिपाक में उत्तम सहायक सिद्ध होंगे, यह सूझ तो संगीतज्ञ को काव्य–ज्ञान ही देगा। रस–विशेष के लिए शब्दों का चयन काव्य–ज्ञान के बिना सम्भव नहीं। शब्दों तथा स्वरों के माध्यम से ही रस–परिपाक होता है। यदि स्वरों को उचित शब्द तथा शब्दों को उपयुक्त स्वर न मिले, तो रस और रंजन, दोनों की सम्भावना नहीं है। संगीत का उपकरण स्वर है, काव्य का उपकरण सार्थक शब्द। किन्तु दोनों का मूलआधार एक ही नाद तत्व या आकाश का गुण 'शब्द' है। संगीत स्वर लय प्रधान है, काव्य शब्द अर्थ प्रधान, संगीत अभिव्यक्ति है, काव्य कल्पना है।

अन्तिम निष्कर्ष यही है कि काव्य और संगीत की सम्मिलित गंगा में अवगाहन करके ही सांस्कृतिक उन्नति का पथ प्रशस्त्र किया जा सकता है। काव्य ज्ञान है, तो संगीत भक्ति है। आनन्द–स्वरूप परब्रह्मा की प्राप्ति के लिए दोनों की एकसाथ आवश्यकता सदा से रही है, और रहेगी।

सन्दर्भ

1. शुक्ल, पं० रामलखन. भारतीय कलाओं का तात्विक– विवेचन एवं ललित कलाएं।
2. जैन, निर्मला. रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र।
3. डा० नगेन्द्र. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका।
4. पाठक, पं० जगदीश नारायण. संगीत निबन्ध माला।
5. गर्ग, लक्ष्मी नारायण. निबन्ध संग्रह. सं0 कार्यालय हाथरस।
5. कुमार, अश्विनी. साहित्य संगीत और मीडिया।
6. (1968). संगीत पत्रिका. सितम्बर।
8. (1974). संगीत पत्रिका. नवम्बर।
9. (1980). संगीत पत्रिका. मई।
10. (2001). संगीत पत्रिका. मार्च।
11. (2002). संगीत पत्रिका. मार्च।